2nd

प्रश्न – सामाजिक आत्मन पर आधारित सिद्धान्तों का वर्णन कीजिए।

उत्तर – सामाजिक आत्मन से यह पता चलता है कि कोई व्यक्ति कितना या किस स्तर का सामाजिक प्राणी है। सामाजिक आत्मन पर आधारित प्रमुख सिद्धान्त निम्नलिखित हैं –

1) दुरखीम का सामूहिक प्रतिनिधान का सिद्धान्त – दुरखीम ने सामाजीकरण की प्रक्रिया प्रतिनिधित्व के आधार पर बताया है। इनका सिद्धान्त पूर्णतया समाजीकरण पर आधारित है तथा यह सिद्धान्त व्यक्ति तथा समाज के परस्पर सम्बन्धों को अधिक महत्व देता है। दुरखीम ने कहा कि सामाजिक मान्यताओं को आत्मसात करना ही समाजीकरण है समाज में व्यवहार सम्बन्धी जो मान्यताएं, विश्वास तथा मूल्य होते हैं उन्हीं को सामूहिक प्रतिनिधान कहा जाता है तथा ये मूल्य ही एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में हस्तान्तरित होते जाते हैं तथा इन मूल्यों तथा आदर्शों के अनुरूप व्यवहार प्रक्रिया समाजीकरण कहलाता है। ये सामूहिक प्रतिनिधान चूंकि समाज द्वारा बनाए जाते हैं इसलिए ये समाज स्वीकृत होते हैं तथा इन मूल्यों में बाध्यता का गुण पाया जाता है। दुरखीम के अनुसार ये सामाजिक एकता बनाए रखने में भी सहायता पहुंचाते हैं।

2) कूली का सामाजिक आत्मदर्शन का दर्पण – अमेरिकन समाजशास्त्री कूली ने अपनी पुस्तक 'Social Organisation' एवं Human Nature and Social Order' में यह समझाने का प्रयास

RAJDHANI
PAGE
DATE / /

किया कि एक जैविक प्राणी कैसे सामाजिक प्राणी बनता है। यही उनके सिद्धान्त का मुख्य बिन्दु है। कूली का कहना है कि आत्म का विकास समाज से होता है तथा इन्हें अलग नहीं किया जा सकता है। उन्हीं के शब्दों में 'स्वयं एवं समाज जुड़वा पैदा हुए हैं।"

"Self and Society are twin born."

कूली के अनुसार बच्चा तीन बातों को सोचता है—

(i) दूसरे मेरे बारे में क्या सोचते हैं?

(ii) दूसरों की राय के सन्दर्भ में मैं अपने बारे में क्या सोचता हूँ?

(iii) मैं अपने बारे में सोचकर अपने को कैसा मानता हूँ?

कूली ने बताया की बच्चों में लगभग दो वर्ष की उम्र में आत्मचेतना का विकास होने लगता है। बच्चे समाज में कैसे सीखते हैं इसके लिए उन्होंने "सामाजिक आत्मदर्शन का दर्पण" सिद्धान्त दिया। इस सिद्धान्त की सर्वप्रथम चर्चा उन्होंने अपनी पुस्तक 'Human Nature and Social Order' में की। समाज किसी व्यक्ति के बारे में क्या सोचता है तथा फिर वह व्यक्ति उस बारे में क्या सोचता है ये प्रक्रिया आजीवन चलती है। इसके फलस्वरूप ही व्यक्ति

में आत्म का विकास होता है। व्यक्ति सामाजिक मूल्यों, आदर्शों एवं नियमों का इसलिए पालन करता है कि समाज उसे अच्छे व्यक्ति के रूप में स्वीकार करे। कोई व्यक्ति अपने बारे में जैसा विचार बनाता है। उसका प्रभाव उसके आचरण एवं व्यक्तित्व के विकास पर पड़ता है।

3) फ्रॉयड का समाजीकरण का सिद्धान्त — फ्रॉयड ने बताया कि कामवृत्तियों का मानव जीवन में महत्वपूर्ण स्थान है। उन्होंने सम्पूर्ण समाजीकरण इड ईगो तथा सुपर ईगो के द्वारा समझाने की कोशिश की तथा यौन वेद में समाजीकरण को ऑडिपस काम्पलेक्स तथा इलेक्ट्रा काम्पलेक्स के रूप में समझाने का प्रयास किया।

फ्रायड ने व्यक्ति के व्यक्तित्व विकास में सुपर ईगो को महत्वपूर्ण माना है। इड का सम्बन्ध हमारी मूल प्रेरणाओं, इच्छाओं तथा स्वार्थों से सम्बन्धित है। ईगो जिसे अहम् कहते हैं। एवं का चेतन व तार्किक रूप होने के कारण वास्तविकता है जो ये निर्धारित करता है कि व्यक्ति को अमुक कार्य करना चाहिए या नहीं। सुपर ईगो का सम्बन्ध सामाजिक मूल्यों एवं आदर्शों से है। मानव व्यवहार का अधिकांश भाग अचेतन शक्तियों द्वारा संचालित होता है।

4) मीड का समाजीकरण का सिद्धान्त — जार्ज मीड एक दार्शनिक तथा सामाजिक मनोवैज्ञानिक थे।

वे अमेरिका में एक शिक्षक थे। उन्होंने अपने जीवन में बहुत कम लिखा, लेकिन जो लिखा व भाषण के दौरान कहा उनके विद्यार्थियों ने एक साथ जोड़कर इनके नाम से Mind, Self and Society का शीर्षक देकर 1934 में एक पुस्तक के रूप में छपवाया तथा वह प्रतीकात्मक संप्रेषवाद के नाम से समाजशास्त्र में प्रचलित हुआ। मीड फ्रायड के विचारों से सहमत नहीं थे उनका कहना था कि शिशु में आत्मन् का विकास अनुकरण से होता है। इसके लिए उन्होंने कहा कि बच्चों को निम्न चरण से गुजरना पड़ता है —

1) प्रारंभिक स्तर — इस अवस्था का काल लगभग एक से तीन वर्ष का होता है इस अवस्था में बच्चा ये नहीं समझता है कि वह क्या कर रहा है। लेकिन जो भी वह करता है उसमे सम्बद्धता नहीं रहती है।

2) क्रीड़ा स्तर — इस अवस्था का काल 4 साल तक का है। इस अवस्था में उसे इस बात की जानकारी होने लगती है कि वह क्या कर रहा है लेकिन जो भी वह करता है उसमे सम्बद्धता नहीं रहती है।

3) खेल स्तर — ये अवस्था 4 से 5 साल या इससे कुछ अधिक रहती है। इस स्तर में वह घर के बाहर कोई खेल खेलना प्रारम्भ कर देता है। वह अपनी तथा दूसरों की भूमिकाओं को समझने लगता है, वह दूसरों की भूमिका निभाने का प्रयास करता है।

इस तरह से बच्चों में आत्म चेतना का विकास होता है। जॉर्ज मीड का कहना है कि बच्चे जब 8-9 साल के हो जाते हैं तो वे व्यवस्थित प्रकार के खेलों में भाग लेने लगते हैं। तब जीवन के मूल्य व नैतिकता की बात सीखने लगते हैं। इस तरह से ही बालक समाज के सामान्य मूल्य, आदर्श व संस्कृति सीखते हैं।

निष्कर्ष —

उपरोक्त विवरण के आधार पर हम कह सकते है कि गिडेन्स के अनुसार जॉर्ज मिड की आलोचना न होने का प्रमुख कारण यह भी था कि उन्होंने दुनिया के सामने कोई आश्चर्यजनक बात नहीं रखी बल्कि सामान्य विचारों को काफी व्यवस्थित ढंग से रखने का प्रयास किया।

प्रश्न - लिंग पहचान एवं समाजीकरण प्रथाओं में विद्यालय में असमानताएँ एवं विद्यालय की भूमिका का वर्णन करो।

उत्तर - विद्यालय में विभिन्न स्तरों पर अनेक प्रकार की चुनौतीपूर्ण लिंग असमानताएँ कक्षा-कक्ष, विद्यालय प्रबन्धन, ज्ञान संरचना तथा विभिन्न गतिविधियों में देखी जाती है। इन सभी चुनौतीपूर्ण लिंग असमानताओं का वर्णन इस प्रकार है -

1) पाठ्यचर्या सम्बन्धी असमानताएँ - विद्यालय स्तर पर पाठ्यचर्या सम्बन्धी अनेक असमानताएँ देखी जा सकती है। जैसे - बालिकाओं के लिए गृह-विज्ञान, सिलाई-कढ़ाई तथा नृत्य सम्बन्धी पाठ्यचर्या तैयार की जाती है। उन्हें इन्हीं से प्रतिभाग करने का परामर्श भी दिया जाता है चाहे बालिका की रुचि इन विषयों में हो या न हो क्योंकी हो सकता है कि बालिका की रुचि गणित तथा विज्ञान जैसे विषयों में हो। कुछ पाठ्यक्रम तथा विषय मात्र बालकों के लिए ही होते हैं। अतः विद्यालय स्तर पर पाठ्यचर्या सम्बन्धी अनेक असमानताएँ दिखाई पड़ती है।

2) कक्षा प्रबन्धन में असमानताएँ - विद्यालय में कक्षा-कक्ष प्रबन्धन में असमानता की स्थिति देखी जाती है। कक्षा-कक्ष में मानीटर की भूमिका में प्रायः बालकों को ही देखा जाता है। अतः इस सन्दर्भ में अध्यापकों से प्रायः उदासीनता देखी जाती कि वह बालिकाओं को इस कार्य के लिए प्रोत्साहित नहीं करते हैं। कभी-कभी यदि कोई अध्यापक बालिका को मानीटर बनाना भी चाहता है तो बालिका स्वयं इन्कार कर देती है।

(3) आन्तरिक गतिविधियों में असमानताएँ - विद्यालय में होने वाली विभिन्न आन्तरिक गतिविधियाँ जैसे - नृत्य, संगीत, नाटक आदि में पर्याप्त असमानता की स्थिति देखी जा सकती है। इन कार्यक्रमों में बालिकाओं को इस कार्य

सहभागिता अधिक होती है। क्योंकि ये बालिकाओं से सम्बन्धित गतिविधियाँ मानी जाती है। इसी प्रकार ऊँची कूद तथा लम्बी कूद प्रतियोगिताओं में बालकों की सहभागिता अधिक देखी जाती है।

4) निर्देशन तथा परामर्श सम्बन्धी असमानताएँ —

विद्यालय में निर्देशन एवं परामर्श सम्बन्धी असमानताएँ भी व्यापक रूप से देखी जाती है। जैसे - यदि कोई बालिका किसी ऐसी सेवा में जाना चाहती है जिन सेवाओं में मात्र बालकों की उपस्थिति ही स्वीकार्य होती है तो ऐसी स्थिति में अभिभावकों की अनुशंसा पर अध्यापक उन सेवाओं में जाने का बालिकाओं को निर्देशन व परामर्श नहीं देते तथा न ही उन्हें प्रोत्साहित करते हैं।

(5) नामांकन सम्बन्धी असमानताएँ — विद्यालय में बालक एवं बालिकाओं के नामांकन में भी असमानताएँ दृष्टिगत होती है। इस स्तर पर बालिकाओं का नामांकन कम देखा जाता है। जबकि बालकों का नामांकन अधिक देखा जाता है। इसका कारण यह है कि अभिभावक बालिकाओं को बालकों की तुलना में विद्यालय कम भेजना चाहते हैं। उनका विचार है कि बालिकाओं को गृहकार्य में लगाना अधिक उचित है। अभिभावकों की इस रूढ़िवादी सोच को विद्यालयी व्यवस्था द्वारा भी परिवर्तित नहीं किया जाता।

6) उच्च शिक्षा सम्बन्धी असमानताएँ — प्रायः बालिकाओं को उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए कम अवसर प्राप्त होते हैं क्योंकि बालिकाओं को अभिभावकों तथा अध्यापकों का पर्याप्त सहयोग प्राप्त नहीं होता। बालकों को उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए अध्यापकों व अभिभावकों

का सहयोग प्राप्त होता है। बालिका की उच्च शिक्षा के प्रति अध्यापकों का यह सोच भी होती है कि यदि अभिभावक ही अपनी बालिका को महाविद्यालय नहीं भेजना चाहते तो मैं क्या कर सकता हूँ। इसी कारण उच्च शिक्षा पर प्रायः बालकों का आधिपत्य रहता है।

(7) वाह्य गतिविधियों में असमानताएँ — सह शिक्षा वाले विद्यालयों में बालिकाओं को शैक्षिक भ्रमण पर ले जाने के लिए एक ओर जहाँ अध्यापकों के मन में भय उत्पन्न होता है वहीं दूसरी ओर अभिभावक भी बालिकाओं को भेजना नहीं चाहते। इस प्रकार बालिकाओं में संकोच की भावना बनी रहती है तथा वे वाह्य गतिविधियों में सहभागिता का प्रदर्शन नहीं कर पाती हैं।

(8.) जागरूकता सम्बन्धी असमानताएँ — बालिकाओं को प्रायः अपने परिवार से लेकर ~~विद्यालय~~ विद्यालय तक एक अनुशासित जीवन व्यतीत करना पड़ता है। इसलिए उनको मात्र अपने जीवन में लगाए गए प्रतिबन्ध ही याद रहते हैं। वे अपने अधिकारों को लेकर जागरूक नहीं हो पाती जिसके कारण वह आगे चलकर शोषण का शिकार होती है।

विद्यालय की भूमिका को हम निम्नलिखित बिन्दुओं से व्यक्त कर सकते हैं —

1- अभिभावक शिक्षक संघ का निर्माण।

2. नामांकन में समानता
3. कक्षा - कक्ष प्रबन्धन में समानता।
4. आन्तरिक व वाह्य गतिविधियों में समानता।
5. निर्देशन एवं परामर्श में समानता।
6. शैक्षिक गतिविधियों में समानता।

7. विद्यालय प्रबन्ध समिति में लैंगिक समानता पर विचार - विमर्श

8. सकारात्मक सोच का विकास।

निष्कर्ष :- उपरोक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि परिवार व विद्यालय समाजीकरण प्रक्रिया के मुख्य साधन है। परिवार प्रथम समाजीकरण संस्था या समूह है और उसके बाद विद्यालय आता है परिवार में एक व्यक्ति स्वयं को एवं अपने व्यक्तित्व को एक आकार प्रदान करता है और विद्यालय में सही निर्देशन से वह एक अच्छा व सुयोग्य नागरिक बनता है।

प्रश्न लिंग पहचान का निर्माण पर संक्षिप्त नोट लिखो।

उत्तर - लिंग पहचान का निर्माण - लिंग (Gender) समाज का आधारभूत तथ्य है जिसके आधार पर ही समाज की गतिविधियों का संचालन, विकास एवं स्वरूप का निर्धारण होता है। लिंग, पुरुषत्व एवं स्त्रीत्व के सामाजिक, मनोवैज्ञानिक एवं सांस्कृतिक विशेषताओं जिनमें से कई जैविक भेद पर आधारित होते हैं। लिंग भेद पहचान के निर्माण को इन निम्नलिखित बिन्दुओं के माध्यम से और स्पष्ट रूप से समझ सकते हैं -

1. सामाजिक स्थिति में लिंग पहचान
2. धार्मिक व्यवस्था में लिंग पहचान
3. शिक्षा के क्षेत्र में लिंग पहचान
4. परिधान के आधार पर लिंग पहचान
5. शारीरिक संरचना के आधार पर लिंग पहचान
6. रोजगार व्यवस्था के आधार पर लिंग पहचान
7. श्रम विभाजन के आधार पर लिंग पहचान
8. योजनाओं के द्वारा लिंग पहचान
9. आरक्षण द्वारा लिंग पहचान
10. विकास के माध्यम से लिंग पहचान

1. सामाजिक स्थिति में लिंग पहचान -
प्राचीन काल से ही भारतीय समाज की पुरुषों की अपेक्षा महिलाओं को कम महत्व दिया जाता है।

लड़कों की पहचान वंश को आगे बढ़ाने वाला, घर का चिराग आदि के रूप में होती है। वहीं लड़कियों के जन्म पर घर में कोई खुशी नहीं मनाई और उन्हें घर सम्भालने वाली के रूप में पहचाना जाता है। इस प्रकार समाज की स्थिति को लिंग भेद बहुत प्रभावित करता है।

2) धार्मिक व्यवस्था में लिंग पहचान — लोग कई देवी-देवताओं के साथ-साथ कई लोग देवियों को भी अपना इष्ट मानते हैं। किन्तु जब बात उनके ऊपर आती है तो कई धार्मिक स्थानों विशेष तथा पूजा-पाठ के स्थानों से वे स्त्रियों को वंचित रखते हैं। लोग उन्हें अशुद्ध एवं अद्भुत मानते हैं किन्तु वर्तमान में लोगों का दृष्टिकोण बदला है और स्त्रियाँ ऐसे धार्मिक कार्य, जैसे-वेद पाठ करना, भागवत कहना आदि जो कार्य स्त्रियों के लिए वर्जित था, उनका भी वे सम्पादन कर रही हैं।

3) शिक्षा के क्षेत्र में लिंग पहचान — पहले बालक एवं बालिका की शिक्षा में पर्याप्त भेद किया जाता था किन्तु वर्तमान परिस्थितियों में बहुत सुधार हुआ है। शिक्षा के क्षेत्र में लिंग का ध्यान रखा जाता है। सरकार बालिकाओं की शिक्षा हेतु विशेष विद्यालयों उनकी रुचियों के अनुसार पाठ्य सहगामी क्रियाएँ, पाठ्यचर्या आदि पर विशेष ध्यान दे रही है।

SUSHIL

Experiment No. .....

Page No. 3

Date .....

4) परिधान के आधार पर लिंग पहचान — समाज में प्रायः लिंग की पहचान उनके परिधान के आधार पर किया जाता है। पुरुष पैंट, शर्ट पहनते हैं और लड़कियां साड़ी, सूट सलवार पहनती हैं। इन्हीं परिधान के आधार पर समाज लिंग की पहचान करता है।

5) शारीरिक संरचना के आधार लिंग पहचान — लिंग की पहचान शारीरिक पहचान संरचना के आधार पर भी की जा सकती है। स्त्री एवं पुरुष दोनों की शारीरिक संरचना एक-दूसरे से भिन्न होती है। स्वाभाविक रूप से भी दोनों में भिन्नता पाई जाती है स्त्रियों में कोमलता पुरुषों की अपेक्षा अधिक पाई जाती है।

6) रोजगार व्यवस्था के आधार पर लिंग पहचान — लिंग के आधार पर रोजगार का निर्धारण किया जाता है। लोगों का मानना है कि जहां विद्यालय, बैंक आदि जगह लड़कियों की नौकरी के लिए उपयुक्त है वहीं कठिन व्यवसाय फौज आदि जगहों पर नौकरी करने के लिए लड़कों को उपयुक्त माना जाता है। इस प्रकार रोजगार के अनुसार लिंग पहचान किया जाता है।

7) वर्ग विभाजन के आधार पर लिंग पहचान — समाज में जब किसी कार्य हेतु वर्ग विभाजन की आवश्यकता होती है तब लिंग का उल्लेख आवश्यक रूप से किया जाता है। जैसे — विद्यालय में आयोजित होने वाले कुछ कार्यक्रम एवं गतिविधियां

छात्र एवं छात्राओं दोनों के लिए होती है किन्तु कुछ का विभाजन छात्र एवं छात्राओं के लिए अलग-अलग होता है।

8) योजनाओं के द्वारा लिंग पहचान — सरकार द्वारा जो भी योजना चलाई जाती है वह लिंग (Gender) के आधार पर बनाई जाती है। भारत सरकार ने सन् 2005-06 पर पूरा जेण्डर बजट अलग से प्रस्तुत किया था जिसमें केवल स्त्रियों से सम्बन्धित योजनाओं का उल्लेख किया गया था।

9) आरक्षण द्वारा लिंग पहचान — समाज के अनेक क्षेत्रों में पुरुष वर्ग का अधिकार है वहाँ महिलाओं की पहुँच नहीं हो पाती है। वर्तमान समय में प्रत्येक क्षेत्र में महिलाओं को सम्मान देते हुए कुछ पदों को उनके लिए आरक्षित कर दिया जाता है जिससे महिलाओं को भी सम्मान अनुभव हो सके। महिलाएँ अपने आप को समाज का एक महत्वपूर्ण हिस्सा मानें तथा यह अनुभव कर सकें कि उनकी भी समाज में अहम भूमिका है।

10) विकास के माध्यम से लिंग पहचान — सामान्यतः समाज में विकास की योजनाएँ लिंग के आधार पर ही बनाई जाती है जैसे - वर्तमान में बालिका उत्थान एवं महिला सशक्तिकरण के लिए कई योजनाएँ बनाई जा रही है जिनका उद्देश्य शिक्षा के क्षेत्र में बालकों एवं पुरुषों के समान बालिकाओं एवं स्त्रियों को स्थान प्रदान कराना है।